भारत–तिब्बत व्यापार के बहाने लोक संगीत की पड़ताल

डॉ.पंकज उप्रेती
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
राजकीय महाविद्यालय टनकपुर (चम्पावत)
उत्तराखण्ड
Email: editorpighaltahimalay@gmail.com

'संगीत' के उद्‌गम को लेकर धार्मिक मान्यताओं और हिमलाय का उल्लेख होता रहा है। ओंकार, शिवतांडव, साधना जैसे शब्द बार–बार सुनाई देते हैं। इन सबके साथ हिमालय क्षेत्र का जुड़े रहना स्वाभाविक है। उच्चहिमालय, मध्यहिमालय और इसके घाटी क्षेत्रों की संस्कृति, भौगोलिक पक्ष, ऐतिहासिक सन्दर्भों में यहाँ की संस्कृति के दर्शन होते हैं। हिमालय के वृहद क्षेत्र में न जाते हुए इस शोधपत्र में जोहार घाटी पर केन्द्रित अध्ययन किया जा रहा है। भारत–तिब्बत व्यापार के अलावा कैलास मानसरोवर यात्रा आदि काल से यहाँ चली आ रही है और इस यात्रा में धार्मिक यात्रियों के अलावा साधकों का आवागमन होता रहा है। यात्रा और पड़ाव हमेशा संगीत से भरपूर होते हैं, इन्हें समझने की व महसूस करने की जरूरत है।

भारत–तिब्बत व्यापार पर चर्चा से पूर्व उत्तराखण्ड के संगीत पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत की लम्बी परम्परा यहाँ रही है। शास्त्रीय विधा के जानकारों के अलावा उन गुणीजनों की संख्या भी काफी है जो शास्त्र से लोक की ओर मुड़े हैं या नई ही परम्परा को स्थापित करने में सफल रहे।[1] यत्र–तत्र बिखरे इतिहास के पन्नों, श्रुतियों–स्मृतियों के आधार पर पता चलता है कि अन्य कलाओं के विकास की तरह इस पर्वतांचल में भी भारतीय शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ। विद्वानों–गुणीजनों का एक राज्य से दूसरे राज्य में जाना तथा राजघरानों द्वारा उन्हें प्रोत्साहित किए जाने का उल्लेख भी यहाँ मिलता है।[2] चूंकि हिमालय राज्य उत्तराखण्ड में लोक संगीत की पृष्ठभूमि के साथ बाहर से आने वाली संस्कृतियों का भी समावेश होता रहा है इसलिये यहाँ की होली और रामलीला तक अनूठे अंदाज की बन चुकी हैं।[3] इन सबके बावजूद हमें इसकी जड़ों तक जाना चाहिये कि क्या उत्तराखण्ड के सीमान्त तक संगीत था? यदि था तो वह किस प्रकार था? अध्ययन में पता चलता है कि अपनी दिनचर्या के साथ लोगों में मनोरंजन के लिये संगीत था। कृषि–पशुपालन के आलावा व्यापार यहाँ का मुख्य कार्य रहा है, जिसे बहुत ही उद्यमिता के साथ करते हुए अपनी संस्कृति को लोगों ने बचाया। दूरुह और दुर्गम मार्गों पर चलते हुए, प्राकृतिक आपदाओं के बीच संघर्ष करते हुए ढोल–नगाड़ों के स्वरों के साथ आध्यात्म की ओर इन लोगों की रुचि रही है।

उत्तराखण्ड में कुमाउँ मण्डल के सीमान्त क्षेत्र की अपनी अजब संस्कृति रही है। जोहार घाटी में में रहने वाली शौका जनजाति का सम्पर्क तिब्बत से रहा है। 1962 में चीन आक्रमण के बाद तिब्बत व्यापार की पुरानी परम्परा बन्द हो गई और व्यापार में भाग लेने वाले परिवार मुनस्यारी, नाचनी, थल, अल्मोड़ा, शामा, कपकोट, बागेश्वर, धरमघर, पांखू सहित यत्र–तत्र रहने लगे।[4] भातर–तिब्बत व्यापार और संगीत पर अध्ययन करने से पता चलता है कि सीमान्तवासी मूलतः यहाँ की आवश्यकताओं और प्रवृत्ति के अनुरूप व्यापारी होते हैं। लम्बी दूरी की यात्राएं, पर्वतारोहण इनके स्वभाव में है। अपनी दिनचर्या के साथ मनोरंजन के लिये संगीत में समूह नृत्यगीतों का आयोजन करते हैं। एक समय यह था कि इस दुर्गम क्षेत्र की जानकारी भी कम लोगों को थी। 19वीं शताब्दी के भारतीय अन्वेषक नामक महत्वपूर्ण पुस्तक की भूमिका में लिखा गया है– 'भारत के इतिहास में 1865 से 1885 तक के बीस वर्ष की अवधि विशेष महत्व रखती है जब भारत के वीर वैज्ञानिक यात्रियों ने दुर्गम हिमालय, रहस्यमय तिब्बत, मंगोलिया, चीन और मध्य एशिया के अन्य देशों की साहसिक यात्रा की। वहाँ की दुर्लभ भौगोलिक जानकारियां उपलब्ध कीं और इतिहास, शासन व्यवस्था, वहाँ के निवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डाला।'[5] भारत–तिब्बत व्यापार के उन दिनों में सिर्फ सीमान्त के व्यापारी ही सीमा आर–पार के परिवेश को जानते थे। भेड़–बकरियों–घोड़ों के अथाह झुण्डों के साथ सम्पन्न

व्यापारी अपने साथियों को लेकर एक ओर से दूसरी ओर जाते थे। यात्रा में निकले लोगों के सुरक्षित जाने और वापसी की कामना करते हुए परिजन व ग्रामवासी एकत्रित होकर अपने ईष्टदेव का आह्वान करते थे। क्योंकि प्राकृतिक आपदा सहित डाकुओं के साथ मुठभेड़ का खतरा रहता था। महान सर्वेयर पं.किशन सिंह रावत के सुपुत्र इन्द्रसिंह रावत लिखते हैं– ''तिब्बत जाते समय व्यापारियों के सम्बन्धी गाजे–बाजे के साथ काफिले में दूर तक जाकर विदा करने जाते थे।.....व्यापारियों के परिवार वाले उनकी वापसी की बाट जोहते रहते थे। उनके लौटने का समाचार मिलते ही ऊंटाधूरा के पास अच्छे–अच्छे पकवान लेकर भेंट करने के लिए युवकों को भेजते और गाँव से दूर तक जाकर नृत्य और संगीत से उनका स्वागत करते थे। सुन्दर कालीनों से सुसज्जित घोड़ों पर सवार अपने व्यापारियों के कीमती सामान से लदे हुए घोड़े, खच्चर, झोपा के साथ सकुशल वापसी आते देखकर खुश हो जाते। काफिले के बीच में सवारी के नये तिब्बती घोड़े, अपने गले में छोटी घंटी को सुरीले स्वर से बजाते और अयाल में शगुन का लाल–पीले रंग का धागा हिलाते हुए शोभा बढ़ाते थे।''[6] यात्रा और व्यापार के साथ मेलों की पौराणिक परम्परा आज भी दिखाई देती है। जौलजीवी, बागेश्वर का उत्तरायणी मेला व्यापारिक मेले के रूप में जाने जाते हैं। वर्तमान में मेले और महोत्सव के रूप में जगह–जगह बनावटी–दिखलावटी आयोजन किये जा रहे हैं लेकिन पौराणिक मेलों में व्यापार के साथ धार्मिक आस्थाएं जुड़ी हुई हैं और स्वतःस्फूर्त लोग व लोक कलाकार इसमें जुट जाते हैं।

NANDASHTAMI FAIR MILAM 1956

मेलों की ऐतिहासिक कथाएं आज भी प्रचलित हैं। राजुला–मालूशाही की अमर प्रेम कहानी में रोमांच, भोट प्रदेश, गेवाड़, बागेश्वर मेले का वर्णन, युद्ध.....का वर्णन मिलता है। उत्तरकाशी के सीमान्त माणा में आज भी शीतकाल प्रवास से पूर्व ग्रामवासी मेले के रूप में अपनी परम्परागत रश्म को अदा करते हैं। पैदल यात्राओं के पुराने जमाने में यात्रियों के पड़ावों में मेले भी मुख्य स्थान हुआ करते थे। महान सर्वेयर पं. नैनसिंह–पं.किशन सिंह भी काठमांडू मेले में रुके थे। उल्लेख मिलता है कि राणाशाही के अधीन नेपाल के भीतर घुसना माना था, केवल शिवरात्रि को पशुपतिनाथ के मेले के अवसर पर भारतीय तीर्थयात्रियों को नेपाल जाने की छूट थी। दो महीने पर्वतों और घाटियों की कठिन यात्रा करके सीसागढ़ी होकर 7 मार्च 1965 को मेले के अवसर पर दोनों अन्वेषक काठमांडू पहुँचे।[7] इसी प्रकार जब यह अन्वेशक तिब्बत के नये वर्ष त्यौहार के दौरान पहुँचे तो उन्होंने सांस्कृतिक आयोजन देखा। तिब्बत का नया वर्ष (लोहसार) के दिन ल्हासा के सभी लोग अपने घरों के ऊपर कई रंगों के झंडे फहराते और सारा दिन पूजा–पाठ, नाच–गाने और खाने–पीने के साथ मनाते थे।[8]

व्यापारिक यात्राओं, माइग्रेसन में एक स्थान से दूसरे स्थान जाने में प्राकृतिक आपदाओं के भय के साथ ही लुटेरों का भय भी हमेशा रहा है। जर्मनी के एल्मार ग्रेपा ने अपने शोध कार्य में कज्जाकी लुटेरों के बारे में जानकारी दी है। डॉ.नारायण सिंह पांगती ने इस शोध के आधार पर पुस्तक तैयार की जो बताती है कि कज्जाकी लुटेरे लूटपाट के लिये हाबी होने लगे थे। 1941 ई. में कज्जाकी लुटेरों द्वारा तिब्बत में जोहार (भारतीय) व्यापारियों का सामान लूटने पर व्यापारी शेर सिंह पांगती ने उनका पीछा किया।[9] संघर्षों से घिरे परिवारों ने किस प्रकार अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाकर रखा यह प्रेरित करने वाला है। व्यापारी के रूप में सीमान्त लोग भले ही घुमन्तू रहे हों लेकिन इनके विद्वानों ने अपनी यादों को डायरियों के माध्यम से सहेज कर रखा और साथ ही लोकोत्सव के रूप में सामुहिक नृत्यगीतों व कथा–कहानियों के साथ अपनी पीढ़ी को संस्कारित किया। साथ ही उन्हें अपनी जड़ों से जुड़ने के लिये के लिये प्रेरित करते रहे हैं। विद्वान रामसिंह पांगती ने समाज सेवा के अलावा अपने लेखन से हमेशा समाज को दिशा दी। 'छितकू की कथा एवं ऐतिहासिक कथायें' पुस्तक की भूमिका में डॉ.आर.एस. टोलिया लिखते हैं– 'फादर फ्रांके के द्वारा लिंङ गाँव के विभिन्न वर्गों व समुदायों को पश्चिमी तिब्बत में उस समय निरन्तर होने वाले युद्धों में भाग लेने के लिये प्रयुक्त होने वाले प्रयाण गीतों को भी लिपिबद्ध किया है.....।'[10] रामसिंह के सुपुत्र लक्ष्मण सिंह पांगती बताते हैं कि विषम भौगोलिक परिस्थितियों के बावजूद लोकधुनों पर आधारित गीत व सामुहिक अभिव्यक्ति के लिये ढुस्का नृत्यगीत जोहार की वादियों में होते रहते हैं।[11] रामसिंह परिवार की ही शिक्षाविद् सुश्री राजकुमारी पांगती कहती हैं– 'रामसिंह जी ने पूरा जीवन समाजसुधार में लगाया। लेखन के साथ सामुहिक अभिव्यक्ति के आयोजनों में वह लोगों को प्रेरित करते थे।[11] श्री गणेश प्रताप ल्वा (रावत) कहते हैं– 'लोकसंगीत के तहत ग्रामीण महिलाएं आपस में नृत्यगीत करती हैं। मनोरंजन के लिये एकल गायन करने वाले कलाकार भी दिखाई देते हैं। माइग्रेसन में मिलम आते–जाते समय मिरासियों का उल्लेख भी मिलता है। इन सबके अलावा कुछ लोगों ने संगीत की विधिवत शिक्षा को महत्व दिया। ताऊ जी स्व. नेत्रसिंह ने मुम्मई में विधवत भारतीय शास्त्रीय संगीत की साधना की। वह मल्ला दुम्मर हरिप्रदर्शनी में भी आते थे।'[12] लेखक स्वयं भी अपने अनुज तबला वादक धीरज उप्रेती के साथ मल्ला दुम्मर, मुनस्यारी में प्रतिवर्ष होने वाली हरिप्रदर्शनी में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिये गया है। नवम्बर माह की ठण्ड में तीन दिन तक महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्व.हरिसिंह जंगपांगी की स्मृति में होने वाले आयोजन के दौरान देखा है कि ग्रामीण ढुस्का कर मनोरंजन करते हैं। मंचीय प्रस्तुति के लिये स्थानीय कलाकार जुटते हैं। ग्रामीणों की संगीत के प्रति बेहद रुचि है। शास्त्रीय रागों की प्रस्तुति भी इन्हें भाती है। दुम्मर, दरकोट वह स्थान है जहाँ माइग्रेसन में आते–जाते लोगों का एक घर होता था। वर्तमान में इन दोनों ही स्थानों में घनी आबादी है।

NANDASHTAMI FAIR MILAM 1956

छिला ज्वार छिल (मेरी यादों का जोहार) पुस्तक में श्री गजेन्द्र सिंह पांगती उल्लेख करते हैं, ''जोहार की जलवायु और वहाँ के निवासियों का भ्रमणशील जीवन, उसके ऊपर व्यापारिक गतिविधियों व ऊनी कारोबार की व्यस्तता। इन सब के सम्मिलित प्रभाव में अधिकांश पूजा पाठ व धार्मिक विधि–विधानों को सूक्ष्म कर दिया गया।''[14] लेकिन मेले/कौतिक के बहाने सांस्कृतिक हलचल के रंग गहरे होते रहे हैं। विभिन्न ग्रामों से टोलियों के रूप में नृत्यगीत के लिये ग्रामीणों में होड़ मचती रही है।[15] इस बार सन् 2017 में गूगल ने महान सर्वेयर पं.नैनसिंह रावत का डूडल बनाया तो वह बहुत चर्चा में थे। नैनसिंह ने दुनिया से अलग–थलग तिब्बत, चीन, मंगोलिया का सर्वे किया था। अपनी संस्कृति व भौगोलिक बनावट के कारण तिब्बत हमेशा अलग सा रहा। भारत में अंग्रेजों ने शासन किया लेकिन तिब्बत की जानकारी के लिये उन्हें भारतीय सर्वेक्षकों का ही सहारा लेना पड़ा। योरोपीय लोगों के लिये प्रतिबन्धित तिब्बत देश के सर्वेक्षण के लिये अंग्रेजों ने जिन भारतीय लोगों को छद्म रूप में प्रयोग किया था, उनमें रायबहादुर किशनसिंह और सीआइई (कम्पेनियन आफ इण्डियन एम्पायर) पं.नैनसिंह का नाम प्रमुख है परन्तु इस कार्य को सर्वप्रथम करने वाले मानी कम्पासी को लोग लोकगीतों के माध्यम से ही याद करते हैं–

''चूक को चुकम मानी, चूक को चूकम हो,
तली बटी ऐगे मानी, तुल सैप हुकुम हो।
ओ मानी कम्पासी मानी, तुल सैप हुकुम हो।
जातिया की कानी मानी, 2
मरन–बचन मैंले, लद्दाख जानी हो।
बाड़ा बोयो मेथी मानी, 2
राम ज्यू की दया होली, लौटी औंल यती हो।
बाटी हालो कुची मानी, 2
सात ज्वाड़ा पौल फाटी, लद्दाख नी पुजी हो।''[16]

मिलम गाँव के देबू बूढ़ा के सबसे बड़े पुत्र मानी ने प्रशिया के राजा फ्रेडिक विलियम चतुर्थ की अनुमति और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सहयोग से श्याघइटवाइट बन्धु के साथ यात्रा पर गये थे। चुम्बकीय यन्त्र कम्पास का विशेष ज्ञान होने के कारण मानी 'कम्पासी' कहलाये। हमारे लोकगीतों में इतिहास का स्मरण भी किया जाता है। जैसा कि उपरोक्त में दिखाई दे रहा है। जोहार के बुर्फु ग्राम में जन्म लेने वाले स्वतंत्रता सेनानी हरिसिंह के स्मरण में स्व.दुर्गासिंह मर्तोलिया गाते थे–

''बुर्फू में जनम लियो
हरि सिंह जंगपांगी..... ।''[17]

खुशालसिंह मर्तोलिया की माह जनवरी में सरकारी कार्य हेतु मिलम जाते समय भारी हिमपात में मृत्यु हो गई। उनकी इस कर्तव्यनिष्ठा पर एक गीत की रचना की गई–

''जाने–जान पूजी गयो नहर क सेन,
दिया–बाती स्यावा छ हो देवी हये दैन।
भोल लौटि औंल देवी यसो सोचि मन,
भोल क्या हुनेर छ क्वे सोची नै सकन।
जब रूठ छ इष्ट देवी, रूठ छ भगवान,
देवता मनख कोई न हुन आपन।
सात फुट बरफ पड़ो मिलम जोहार,
सैप कोंछ कसी जानूं आब मुनस्यार।
औंन रयाँ छी वीं गीत गैन,
ऐ गेछ मली है बरफ तुफान,
हँस उड़ी गेछ काँ हो उड़ी गे परान,
हे राम! हे शिव! शिव! हे राम! हे राम!!
हे राम! हे राम।।''[17]

गीतों के प्रकारों में संस्कार गीत, मौसम के गीत, त्यौहारों के गीत, मेलों के गीत से लेकर अन्य कई गीत सीमान्त में हैं। इस शोधपत्र में केवल यह अध्ययन किया जा रहा है कि विपरीत परिस्थितियों में भी गीत–संगीत के साथ अपने मनोरंज, अपने इतिहास, अपने कर्मों को जीने वाले लोगों ने कभी हार नहीं मानी हैं। वर्तमान में भारत–तिब्बत व्यापार की परिस्थितियां बदल चुकी हैं लेकिन यादों की बुनियाद हमें बताती है कि कई परेशानियों के बीच भी यहाँ के लोगों ने अपनी संस्कृति को संरक्षित किया, जो उनकी बोली, वस्त्राभूषण, खानपान, गीत–संगीत के रूप में हमारे बीच है। कामना की जानी चाहिये कि इन गीतों का विशुद्धपन बना रहे। लोक का अपना शास्त्र, अपने तर्क होते हैं।

सन्दर्भ –

1. पंकज उप्रेती, *संगीत सुधा,* पिघलता हिमालय प्रकाशन, हल्द्वानी, नैनीताल, द्वितीय संस्करण सन् 2005, पृष्ठ– 104
2. वही, पृष्ठ– 104–116
3. पंकज उप्रेती, *कुमाऊँ का होली गायन लोक एवं शास्त्र,* पिघलता हिमालय प्रकाशन, हल्द्वानी, नैनीताल, प्रथम संस्करण सन् 2009, पृष्ठ– 111–114
4. 'पिघलता हिमालय' साप्ताहिक समाचार पत्र के अंक सीमान्त घाटी जोहार पर केन्द्रित हैं। इनमें प्रकाशित लेख, साक्षात्कार इस बात की पुष्टि करते हैं कि बर्फ से लदी घाटी में लोगों का जीवन कैसा रहा है और माइग्रेसन व्यवस्था में ये परिवार किस प्रकार मौसम के अनुसार आते–जाते हैं। इनकी कला–सुंस्कृति किस प्रकार की है।
5. 19वीं शताब्दी के भारतीय अन्वेषक, इन्द्रसिंह पांगती। प्रकाशन विभाग सूचना विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार। अनुवाद राजेन्द्र सिंह रावत। दिसम्बर 2009।
6. 19वीं शताब्दी के भारतीय अन्वेषक, इन्द्रसिंह पांगती। प्रकाशन विभाग सूचना विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार। अनुवाद राजेन्द्र सिंह रावत। दिसम्बर 2009। पृष्ठ– 5
7. वही, पृष्ठ– 7
8. वही, पृष्ठ– 31
9. एन.एस.पांगती *'एक जोहारी व्यापारी द्वारा कज्जाकी लुटेरों का पीछा*, लालकुंज, जोहार नगर, हल्द्वानी जिला नैनीताल, उत्तराखण्ड। पृष्ठ– 91–92
10. रामसिंह पांगती, *छितकू की कथा एवं ऐतिहासिक कथायें,* लक्ष्मण सिंह पांगती(सम्पादक), जोहार प्रकाशन मुनस्यारी/हल्द्वानी। पृष्ठ– 66–68
11. मुनस्यारी निवासी श्री लक्ष्मण सिंह पांगती जो अब जोहार नगर भोटिया पड़ाव, हल्द्वानी जिला नैनीताल में रहते हैं से बातचीत पर आधार पर। दिनांक– 3.8.2017
12. दरकोट, मुनस्यारी में निवास कर रही सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य सुश्री राजकुमारी पांगती से बातचीज के आधार पर। दिनांक 4.11.207
13. श्री गणेश प्रताप सिंह रावत, प्रबन्धक बैंक ऑफ इंडिया पीलीभीत, उत्तर प्रदेश से बातचीज के आधार पर। श्री गणेशप्रताप के पूर्वज भी जोहार घाटी के ल्वा गांव के रहने वाले थे। इनका परिवार अब हल्द्वानी में बस चुका है। दिनांक 2.12.2017
14. गजेन्द्र सिंह पांगती, *छिला ज्वार छिल (मेरी यादों का जोहार),* प्रकाशक –अनीता पांगती, नवीन लॉज, एमबी इंटर कालेज के सामने, भोटिया पड़ाव, हल्द्वानी जिला नैनीताल। पृष्ठ–157
15. वही, पृष्ठ–165
16. शेरसिंह पांगती, *मुनस्यारी लोक और साहित्य,* नानासेम हैरीटेज संग्रहालय मुनस्यारी, पृष्ठ– 53
17. पिघलता हिमालय के संस्थापक स्व.दुर्गासिंह मर्तोलिया को लेखक ने बचपन में सुना है। मुनस्यारी से हल्द्वानी तक लगातार हमारे छापाखाने 'शक्ति प्रेस' तक उनका आना होता था। पिता स्व.आनन्द बल्लभ उप्रेती और उनकी वार्तालाप के बीच पता चलता है कि हरि प्रदर्शनी में उन्होंने हरिसिंह ज्यू पर लिखे गीत को गाया।
18. शेरसिंह पांगती, *मुनस्यारी लोक और साहित्य,* नानासेम हैरीटेज संग्रहालय मुनस्यारी, पृष्ठ– 55